नाबार्ड
न्यूज़लेटर
भाग - 19 मार्च 2009 सं.11-12

नए भर्ती किए अधिकारियों को अध्यक्ष महोदय का संबोधन

भारतीय कृषि : सिंहावलोकन और भविष्य

आपने कृषि और ग्रामीण विकास की इस शीर्ष संस्था नाबार्ड में कैरियर बनाने का फैसला किया है. मैं आप सब का हार्दिक स्वागत करता हूँ. जीवन में सफलता के मुख्य स्तंभ हैं निष्ठा, जिज्ञासा, परिश्रम और सीखने की इच्छा. मैं जानता हूँ कि आप सब अपने चुने हुए रास्ते पर कार्य प्रारंभ करने के लिए उत्साहित हैं. अपने दायित्वों को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए उत्साह के साथ साथ ज्ञान का संतुलन भी ज़रूरी है. आपमें से कई अभी अभी कॉलेज से निकले हैं और जो ग्रामीण परिवेश से आए हैं उन्हें छोड़कर अन्य को उस क्षेत्र का अपेक्षित ज्ञान भी नहीं होगा जहाँ आप अपना कैरियर बनाने जा रहे हैं. आज मैं संक्षेप में आपको भारतीय कृषि के इतिहास की जानकारी दूँगा और बताऊँगा कि हम कहाँ थे, कहाँ पहुँचे हैं और यहाँ से हमें कहाँ जाना है.

पृष्ठभूमि

सदियों से कृषि ही भारतीय अर्थ व्यवस्था का आधार रही है और यही स्थिति आज भी बनी हुई है क्योंकि आज भी हमारी जन संख्या का लगभग 57 प्रतिशत अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही (प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से) निर्भर है. अब प्रश्न यह है कि हमारी अर्थ व्यवस्था के मुख्यतः कृषि पर आश्रित होने के बावजूद कृषि के विकास की गति धीमी क्यों रही है? इसका उत्तर भी, कुछ हद तक हमें इतिहास में ही मिल जाता है.

भारत में औपनिवेशिक शासन से पहले कृषि कमोबेश आत्मनिर्भर होते हुए भी मुगलों द्वारा स्थापित भू स्वामित्व व्यवस्था (जमींदारी, रैयतवारी, जागीरदारी आदि) पर ही आधारित थी. ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के दौरान इसी व्यवस्था को और सुदृढ़ किया गया. इसके अलावा उन्होंने करों के वस्तु रूप भुगतान के स्थान पर नकद भुगतान की प्रणाली शुरू की जिससे आढ़तिये, व्यापारी और अन्य मध्यस्थ अस्तित्व में आए जो आज तक बने हुए हैं. वर्ष 1870 भारत का प्रशासन ब्रिटिश शासन को सौंपे जाने के बाद से पहले कृषि के विकास के लिए सरकारी अनुदेश जारी किए जाने का कोई रिकॉर्ड नहीं मिलता. तत्कालीन वाइसरॉय लार्ड मेयो ने सरकार की ज़िम्मेदारी महसूस करते हुए 1870 में पहली बार कृषि में सुधार के लिए प्रयास शुरू किए. मगर इसके लिए कुछ खास कदम नहीं उठाए गए. भारत में तीन भयंकर अकाल पड़े हैं जिनमें से पहला अकाल 1876-1878 के बीच आया था. इस अकाल के दौरान 50 लाख से ज़्यादा लोग भूख से मर गए थे. ऐसे हालात में, जब लॉडर

रिपन वाइसरॉय बने, तो सरकार में कृषि सचिव का एक नया पद सृजित किया गया और पंजाब में 1880 में और बॉम्बे में 1884 में प्रांतीय निदेशकों की नियुक्ति भी की गई.

वर्ष 1899 में एक और अकाल पड़ा जिसके कारण तत्कालीन वाइसरॉय लार्ड कर्ज़न ने कृषि उत्पादन में सुधार लाने के लिए ठोस और उपयोगी उपाय किए. उन्होंने सिंचाई आयुक्त नियुक्त किया, पूसा* में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (आईएआरआई), नागपुर (1905) और पुणे (1907) में कृषि महाविद्यालय, कृषि अनुसंधान स्टेशन्स स्थापित किए और किसानों को बीज और उवर्रक जैसी निविष्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था की. जॉन आगस्टीन, जो रॉयल एग्रिकल्चर सोसायटी, लंदन में कार्य कर रहे थे, को भारतीय कृषि का अध्ययन करने और उसमें सुधार का सुझाव देने के लिए भारत भेजा गया. उनकी रिपोर्ट में प्रौद्योगिकी के उपयोग के लिए वित्त एवं सिंचाई की जरूरत का उल्लेख किया गया.

उस वक्त भारत में सहकारिता की कोई गतिविधि नहीं थी. सर फ्रेडरीक निकल्सन, महाराष्ट्र प्रांत के एक आईसीएस अधिकारी, को जर्मनी विशेष रूप से र्हाइनलैंड भेजा गया. उन्होंने जर्मनी के र्हाइनलैंड एरिया में सहकारिता पर अध्ययन किया और इस संबंध में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की. तथापि, कृषि में निवेश करने के लिए किसानों को नकदी उपलब्ध कराने और कृषि उपज बढ़ाने की समस्या का समाधान नहीं हुआ. लॉर्ड कर्ज़न ने 1904 में ऑल इंडिया +को-ऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटीज एक्ट बनाया और इसके साथ ही भारत में सहकारिता आंदोलन का जन्म हुआ. प्राथमिक कृषि सहकारी ऋण समितियों और सहकारी बैंकों के माध्यम से कृषि को वित्तपोषित करने के लिए एक संरचना निर्मित की गई.

1912 में ऑल इंडिया को-ऑपरेटिव क्रेडिट सोसायटीज् एक्ट को ऑल इंडिया को-ऑपरेटिव सोसायटीज एक्ट में तब्दील कर दिया गया. उस समय यह केन्द्र का विषय था - और संघ की सूची में था किन्तु 1919 में इसे राज्य की सूची में अंतरित कर दिया गया और प्रत्येक राज्य ने अपने स्वयं के अधिनियम बनाए. बॉम्बे स्टेट ने 1925 में बॉम्बे को-ऑपरेटिव सोसायटीज एक्ट बनाया और कई राज्यों ने इसका अनुसरण किया.

1925 में कृषि पर रॉयल कमिशन नियुक्त किया गया. कृषि से संबंधित रॉयल कमिशन ने भारत में कृषि विकास की एक रूपरेखा तैयार की. इस कमीशन की संस्तुति के फलस्वरूप भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) और शुष्क भूमि कृषि के लिए रिसर्च स्टेशन्स स्थापित किए गए. फिर भी 1943 में हमें बंगाल का अकाल झेलना पड़ा.

किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात कृषि को बहुत ज्यादा तवज्जो मिला क्योंकि पंडित नेहरू का कहना था कि ''हर चीज के लिए प्रतीक्षा की जा सकती है लेकिन कृषि के लिए नहीं'' . तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) में कृषि क्षेत्र की क्षमता और उत्पादकता में सुधार लाने तथा खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने पर विशेष जोर दिया गया. नोबेल पुरस्कार विजेता श्री नॉर्मन बॉरलॉग,

जो मैक्सिको में अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (आईआरआरआई) में कार्य करते थे, 1964 में भारत यात्रा पर आए और भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान का दौरा किया. उन्होंने परीक्षण के लिए गेहूँ की चार ज्यादा उपज वाली प्रत्येक किस्मों के 100 किलो बीजों की व्यवस्था की. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा और पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना में हमारे वैज्ञानिकों ने डॉ.बॉरलॉग की तर्ज पर कार्य किया और बीजों की किस्म में चमत्कार कर कल्यानसोना और सोनालिका की प्रजाति वाले बीजों को विकसित किया - जिसे भारत में अधिक उपज वाली गेहूँ की पहली अर्ध-बौनी प्रजाति के रूप में पहचान मिली. उसके बाद 1960 के दशक में भी आईआरआरआई, फिलिपाइन्स द्वारा ''चमत्कारिक चावल'' के नाम से बहुत अधिक उपज वाली आईआर-8 किस्म विकसित की गई. उसके पश्चात पूरी कहानी ही बदल गई.

पूर्व में शुरू किए गए हरितक्रांति के माध्यम से संकर और लचीली फसल वाली किस्में ईजाद की गई जिससे कुछ समय के बाद उत्पादकता और उत्पादन विशेषकर गेहूँ और चावल के मामले में बहुत सुधार हुआ. उसके पश्चात प्रगति का सिलसिला जारी रहा. 1951 में जहाँ खाद्यान्नों का उत्पादन मात्र 50 मिलियन टन था 1971 में वह बढ़कर 107 मिलियन टन हो गया और 2007-08 में 231 मिलियन टन के साथ अब तक खाद्यान्न उत्पादन का सर्वाधिक रिकार्ड दर्ज किया गया. इस कीर्तिमान को हासिल करने के लिए अत्यधिक प्रयास किए गए. केन्द्र सरकार, राज्य सरकार, अनुसंधान संस्थाओं, प्रौद्योगिकी अंतरण एजेन्सियों और भारतीय किसानों के समिल्लित प्रयास के बिना यह सफलता प्राप्त करना असंभव था. कुल मिलाकर प्रभावशाली कार्य निष्पादन के बावजूद अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है.

हरितक्रांति के पश्चात इस क्षेत्र में और कुछ ज्यादा नहीं किया जा सका. अधिकांश फसलों की उत्पादकता कुल मिलाकर स्थिर सी हो गई है. उत्पादन पूर्व और उत्पादन के पश्चात दोनों स्तरों पर आनेवाली कठिनाईयों, घटते प्रतिलाभों, व्यष्टि और समष्टि स्तरों पर स्थिर आर्थिक परिदृश्य, पुरानी प्रौद्योगिकियों आदि के कारण इस क्षेत्र की प्रगति धीरे-धीरे अवरूद्ध होती जा रही है. इसका परिणाम सकल घरेलू उत्पादन में कृषि के घटते हिस्से के रूप में सामने दिखाई दे रहा है (2007-08 के दौरान 18%) जबकि अभी भी देश की 57% जनसंख्या कृषि के बलबूते ही अपना जीवनयापन कर रही है.

अवसर और बाधाएँ

विभिन्न कृषि जलवायु वाली परिस्थितियों और उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों पर दृष्टिपात करने से यह बात सिद्ध हो जाती है कि देश में उपलब्ध प्रचुर संभाव्यता का उपयोग नहीं हो रहा है. भारत विश्व के भू-क्षेत्र का 2.3%, विश्व के कृषि क्षेत्र का 11.6% और विश्व के सिंचाई क्षेत्र का 20% है. इसके बावजूद अब तक हमने अपनी सिंचाई की संभाव्यता का सिर्फ 60% का ही उपयोग कर पाए हैं. भारत (142 मिलियन हेक्टेयर) की तुलना में चीन के पास कम कृषि योग्य क्षेत्र (130 मिलियन हेक्टेयर) है किन्तु चीन का खाद्यान्न उत्पादन भारत से दुगुना है. इससे आपको इस बात का अंदाजा लग गया होगा कि उपयोग में न लायी गई संभाव्यता के मामले में भारत की स्थिति क्या है.

पहले से ही दूध, चाय, दलहन, चावल, गेहूँ, फल,मूँगफली, कॉफी, गन्ना, मोटे-अनाज, कपास आदि के विश्व उत्पादन के मामले में भारत का स्थान पहले से पाँचवे नंबर पर है. भारत की उत्पादकता विश्व में अन्य जगहों की सर्वोत्तम उत्पादकता के 1/3 से भी कम है किन्तु कुल उत्पादन के मामले में अभी भी भारत पहले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे स्थान पर है. इन शक्तियों को अवसरों में परिवर्तित करना एक बहुत बड़ी चुनौती है.

सामाजिक - जनसांख्यिाकी के मानदंडों के अनुसार भी सराहनीय विकास हुआ है. मृत्यु दर, शिशु मृत्यु दर और जन्म दर में कमी आयी है तथा जीवन अवधि (life expectancy), शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के मामलों में महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ है. तीसरी सबसे बड़ी कुशल श्रम-शक्ति और विभिन्न संसाधन आधार की उपलब्धता के बावजूद हमने उत्पादकता का जो स्तर हासिल किया है और प्रौद्योगिकी आधारित उत्पादकता की जो संभाव्यता मौजूद है उसके बीच बहुत बड़ा अंतर है. यदि भारत विभिन्न फसलों के मामले में विश्व औसत का स्तर प्राप्त कर ले, विश्व के अन्य देशों के जैसी उत्पादकता हासिल कर ले तो एक और भारत की खाद्य संबंधी जरूरतें पूरी की जा सकती है. इसलिए कृषि अत्यंत महत्वपूर्ण है. इस कार्य को करने के लिए हम दूसरी हरित क्रॅांति लाएं इसके लिए सर्वप्रथम हमें यह समझना चाहिए कि हमने पहली हरित क्रॅांति को कैसे आगे बढ़ाया था. यह सच है कि हमारा देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में सफल रहा है किंतु हमें इस बात को भी स्वीकार करना चाहिए कि हम सिर्फ आँकड़ों के मामले में आगे हैं, उत्पादकता में नहीं. इसके अलावा सिर्फ उत्पादकता ही अकेला मुद्दा नहीं है जहाँ हमें ध्यान देने की जरूरत है. जब हम उत्पादकता की बात करते हैं तो उसे जारी रखने का भी प्रश्न पैदा हो जाता है जिससे हम भविष्य में भी ऊँची उत्पादकता का स्तर कायम रख सकें. इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि भारतीय कृषि के समक्ष जो कठिनाइयाँ हैं उस पर विस्तार से चर्चा हो और शीघ्र उसका समाधान हो.

प्रौद्योगिकी संबंधी कमियाँ और विस्तार सेवाएँ

उत्पादकता के मामले में अंतर-क्षेत्रीय असमानता बहुत अधिक है जिससे संपूर्ण स्तर पर अखिल भारतीय उत्पादकता पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है. यह अंतर सिर्फ प्रौद्योगिकी की विफलता के कारण नहीं है. इसका कारण यह है कि जो प्रौद्योगिकी अपनाई गई वह संबंधित क्षेत्रों की कृषि-जलवायु संबंधी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी जिसके चलते अच्छा कार्यनिष्पादन नहीं हो सका. हरित क्रांति के द्वारा जो प्रौद्योगिकी आई थी उसका लाभ बेहतर बुनियादी सुविधा, लिंकेज और उद्यमी किसानों वाले क्षेत्रों / राज्यों को ही मिला. चावल और गेहूँ के मामले में पंजाब की उत्पादकता क्रमशः प्रति हेक्टेयर 6 टन और 4 टन है जो तुलनात्मक रूप से विश्व स्तर पर सर्वोत्तम है. हरियाणा, तमिलनाडु और आंध्र प्रदेश पंजाब के बराबर उत्पादकता प्राप्त करने की ओर अग्रसर हैं. किंतु पूर्वी भारत अर्थात् बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और असम की स्थिति अच्छी नहीं है भारत में धान उत्पादन के मामले में इस क्षेत्र का हिस्सा 50% है और यह क्षेत्र प्रच्छन्न संभाव्यता का खजाना है. पूर्व अंचल के राज्यों में अपार संभाव्यता, उपजाऊ जमीन, प्रचुर मात्रा में

जल और अच्छे मानसून का उपलब्धता है. हमें वहां पर प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने, ऋण प्रदान करने और विपणन की व्यवस्था करने की जरूरत है. जब इन तीन चीजों की व्यवस्था हो जाएगी तो उस क्षेत्र की संभाव्यता बढ़ जाएगी. भारत में खाद्य सुरक्षा के लिए पूर्वी भारत पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है क्योंकि थोड़े से प्रयास से इस क्षेत्र में बहुत उपलब्धि हासिल की जा सकती है. जिन राज्यों में प्रच्छन्न संभाव्यता मौजूद है वहाँ विशेष ध्यान केन्द्रित कर इस अंतर क्षेत्रीय असमानता दूर करने की जरूरत है. यह एक ऐसा मुद्दा है जिसे आपको ध्यान में रखना है.

प्रौद्योगिकी हमारे विकास की आधार होनी चाहिए. ऐसा नहीं कि हमारे पास प्रौद्योगिकी नहीं है. जैसा कि मैंने पहले भी कहा है अपनी जरूरत के मुताबिक प्रौद्योगिकी का उपयोग न कर सकने पर ही, हम विफल रहे हैं. कई मंचों पर लोगों ने यह कहा कि भारत की कृषि प्रौद्योगिकी की कमियों से जूझ रही है और यह सही भी है. कृषि में जब आप नई किस्म विकसित करते हैं तो उसे उन सभी लोगों तक पहुँचने में समय लगता है जो उसका उपयोग करते हैं. प्रौद्योगिकी की कमियों को दूर किया जाना चाहिए और नई प्रौद्योगिकी की प्रणाली को अपनाते रहना चाहिए तथा जहाँ पारंपरिक प्रौद़्योगिकी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई हो तो हमें बायो-टेक्नोलॉजी अपना लेनी चाहिए. बीटी कॉटन पर गौर करिए. बोलवर्म, कपास की फसल का सबसे बड़ा शत्रु है जो कॉटन के बॉल में छेद कर देता है और पूर्ण रूप से विकसित होने से पहले अंदर से उसके नरम मीठे टिश्यु को खा जाता है. बड़े पैमाने पर बोलवर्म का संक्रमण होने वाले वर्ष में भारत को रु.5000 करोड़ से भी अधिक मूल्य के कपास की क्षति हो सकती है. जब बी.टी. काटन प्रवर्तित किया गया था तब इसका भारी विरोध हुआ था और इसके विरोधियों के एक समूह का यह कहना था कि आनुवंशिक रूप से परिवर्तित प्रजाति को भारत में प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाएगी किंतु अंत में विवाद सुलझ गया और बी.टी. काटन प्रवर्तित कर दिया गया. इसकी शुरूआत के पश्चात पाँच वर्षों के अंदर कपास का उत्पादन 300 मिलियन बेल के ऊपर पहुँच गया. महाराष्ट्र, जो पहले 30 लाख बेल पैदा करता था, अब 60 लाख बेल पैदा करता है.

कई वर्षों से हम कृषि अनुसंधान संस्थानों का एक समूह स्थापित करने में सफल रहे हैं जिसमें योग्य व्यक्तियों का बड़ा समूह कृषि अनुसंधान के कार्य में लगा हुआ है और ये संस्थान विश्वस्तरीय हैं. यह हमारी शक्ति है. यह हमारी कमजोरी है कि हम अच्छे परिणामों को प्रयोगशाला से खेतों तक अंतरित नहीं कर पाए हैं. निरूत्साहित मनोवृत्ति के साथ हम बेहतर / अच्छी उत्पादकता प्राप्त करने की उम्मीद नहीं कर सकते. हमें देशज् अनुसंधान और तेज करने हैं तथा इसके परिणामों को किसानों तक पहुँचाना है.

यहाँ विस्तार सेवाओं और प्रौद्योगिकी सेवा प्रदाताओं की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है. परिणाम सुनिश्चित करने के लिए प्रौद्योगिकी अंतरण की समस्याओं का समाधान हो जाना चाहिए. विभिन्न - राज्य सरकारें, कृषि विश्वविद्यालय, अनुसंधान केन्द्र, बैंक तथा नाबार्ड अलग-थलग रह कर कार्य नहीं कर सकते. नाबार्ड 1982 से ही किसान क्लबों का संवर्धन करता आया है. ये क्लब

किसानों, बैंकों और अनुसंधान संस्थानों के बीच कड़ी का कार्य करते हैं; कुल मिलाकर देश में लगभग 31000 किसान क्लब हैं. इस प्रयोजन हेतु हमें राज्य सरकारों के साथ मिल कर काम करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि वे नाबार्ड के माध्यम से उच्चतर उत्पादन के लिए जानकारी के प्रसार और प्रौद्योगिकी अंतरण के लिए सहायता प्रदान कर रहे हैं. अनुसंधान पर ध्यान दिया जाए और इस प्रौद्योगिकी को किसानों तक पहुचाने के बारे में भी इसी तरह ध्यान दिया जाए. हमें चाहिए कि विभिन्न संस्थाओं के बीच हम उचित समन्वय स्थापित करने का प्रयास करें. जिससे कृषक समुदाय बेहतर तरीके से लाभान्वित हो सके.

विविष्टि आपूर्ति

निविष्टि आपूर्ति प्रबंधन, विशेषरूप से बीजों और उर्वरकों के मामले में, एक चिंता का विषय है. अल्प बीज रिप्लेसमेंट की दर कम उत्पादकता का मुख्य कारण है. उन राज्यों के मामले में निविष्टि आपूर्ति प्रबंधन बहुत महत्त्वपूर्ण है जिनके पास इन जरूरतों से सक्षमतापूर्वक निपटने के लिए संस्थाएं नहीं हैं. ये ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर ध्यान देने की जरूरत है, विशेषकर जब हम अधिशेष सृजित करते हों. इस प्रकार अधिशेष का उचित प्रबंधन अनिवार्य हो जाता है.

मृदा और मौसम की स्थितियाँ

जिस प्रकार निविष्टियों की पर्याप्त और समय पर उपलब्धता आवश्यक है उसी तरह उसका उचित रूप से उपयोग भी आवश्यक है. भारतीय कृषि एक दूसरी बड़ी समस्या का सामना करती आ रही है - वह हैं मृदा की समस्या. जब हम मृदा की बात करते हैं तो वह सिर्फ मृदा ही नहीं होती है बल्कि उसमें हवा, पानी, केचुएं, माइक्रोब्स, कीटाणु, फंगस आदि शामिल हैं जो मृदा के अंदर साथ मिल कर अपना कार्य करते हैं. केंचुआ दिन-रात ट्रैक्टर की तरह बिना किसी मजदूरी के काम करता रहता है और इस तरह वह लगातार मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ाते रहता है. इमिटिंग फैक्टर के नियम के अनुसार जब किसी प्रक्रिया की गति कई कारकों पर निर्भर हो तो ऐसी प्रक्रिया उस कारक पर निर्भर करेगी जो सब से कम होगी.

यद्यपि हम यह कहते हैं कि यदि मिट्टी में पोषण तत्व न हो तो उर्वरक डालिए, किंतु उर्वरकों का उपयोग अत्यधिक हो गया है. अब तक हमें यह पता नहीं है कि वास्तव में हम कितने प्रतिशत उर्वरक का उपयोग करते हैं और कितना नष्ट हो जाता है. इसका परिणाम यह हुआ है कि खेती वाली जमीन से आवश्यक पोषण तत्व समाप्त होता जा रहा है. वैज्ञानिकों का कहना है कि एनपीके की उपयोग की सही मात्रा का अनुपात 4:2:1 है. किंतु नाइट्रोजिनियस उर्वरक की पसंदगी के कारण वास्तविक उपयोग की मात्रा असंतुलित हो गई है. किसान यूरिया का उपयोग ज्यादा करते हैं क्योंकि यह सस्ती होती है और आसानी से उपलब्ध है.

वर्ष दर वर्ष उर्वरकों की सब्सिडी बढ़ती जा रही है और इससे अब बजटीय चिंता बढ़ गई है. मृदा संबंधी समस्याओं का समाधान खोजने के लिए संयुक्त पोषण प्रबंधन एकमात्र उत्तर है अर्थात् आर्गनिक और इनआर्गनिक दोनों उर्वरकों का मिश्रण. इन उर्वरकों का उपयुक्त मिश्रण होना चाहिए, अन्यथा ये जमीनें हमेशा के लिए हमारे हाथ से निकल जाएगी. हम भविष्य की पीढ़ी के लिए उत्तरदायी हैं, वे हम पर गैर जवाबदारी और मिट्‌टी की शक्ति क्षीण करने का आरोप लगाएगें. जो हमसे पाँच पीढ़ी बाद आएगें उनके लिए हमारी जवाबदारी है इसलिए हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हम मिट्‌टी की समस्या का समाधान कर लें. इस संदर्भ में मृदा पोषण का संतुलन बनाए रखना बहुत महत्त्वपूर्ण है.

विविधीकरण और बदलती हुई फसल प्रणाली

बदलती आर्थिक परिस्थितियों और ढेर सारी पसंदगियों की उपलब्धता के कारण उपभोक्ता के स्वाद और भोजन सामग्री में बदलाव हो रहा है. आज सिर्फ रोटी, चटनी या थोडी सी सब्ज़ी ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि हमें दूध, फल, मछली, मांस, चिकन और अंड़े भी चाहिएँ. उपभोक्ता सामग्री का व्यापक रूप में विविधिकरण हुआ है. हमें अधिक उत्पादन के साथ-साथ अपनी कृषि का विविधिकरण करना चाहिए ताकि उससे अधिक आय प्राप्त हो. भारत में विविध कृषि-मौसम परिस्थितियाँ है. अनुकूल कृषि-मौसम स्थितियाँ होने की वजह से विश्व में किसी भी स्थान पर ली जा रही फसल को भारत में भी आसानी से उगाया जा सकता है. यहाँ पर सभी प्रकार का मौसम है - शुष्क, अर्द्ध-शुष्क, ऊष्ण कटिबंधीय व शीतोसण. भारत में कृषि मौसम स्थितियों में विविधिकरण होने से भारतीय कृषि तकरीबन किसी भी फसल की खेती करने में समर्थ है. भारत में प्रमुख रूप से बागवानी की चार फसलें होती हैं - अंगूर, संतरा, सेब व आम जो विश्व के समूचे बागवानी उत्पाद का 60% है. ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में भारत सरकार की राष्ट्रीय बागवानी मिशन के अंतर्गत बागवानी के लिए रु.15,000 करोड़ की राशि आबंटित की गई है जिससे वह अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा कर सके. दूसरा क्षेत्र नियंत्रित पर्यावरण अर्थात् ग्रीन हाउस उत्पादन के अतंर्गत कृषि है. नियंत्रित वातावरण विशेषकर पुष्पोत्पादन में उत्पादन को संवर्धित करने के लिए भारत बहुत उपयुक्त देश है. लगभग 50% ग्रीन हाउस फूल महाराष्ट्र, कर्नाटक और केरल से निर्यात किए जाते हैं जहाँ 1 हेक्टेअर ज्वार से 250 श्रम दिवस का रोजगार पैदा होता है वहीं उतने क्षेत्र के लिए ग्रीनहाउस में 10,000 श्रम दिवस का रोजगार पैदा होता है. पुष्पोत्पादन में ग्रामीण महिलाओं के लिए रोजगार का बहुत अच्छा अवसर उपलब्ध है क्योंकि इसकी खेती में अधिकांश महिलाएं ही काम करती हैं. यदि आप ग्रामीण जनसंख्या की स्थिति में सुधार लाना चाहते हैं तो विविधीकरण, वाणिज्यीकरण और ऊँचे मूल्य वाली फसलों का संवर्धन करना पड़ेगा क्योंकि खेतों में, उपजोपरांत कार्य, परिवहन, स्टोरेज और निर्यात अभिसंसाधन के क्षेत्र में रोजगार सृजन के काफी अवसर रहते हैं. ये हमारी शक्ति हैं. जिन्हें हमें अवसरों में परिवर्तित कर देनी चाहिए.

कृषि की व्यवहार्यता

कृषि को सुधारने के लिए आवश्यक उपायों को शुरू किए जाने/ बढ़ाए जाने के उपायों के बावजूद हमारे किसानों के लिए कृषि की व्यवस्था अधिक व्यवहार्य नहीं है. किसान अपने खेतों को इसलिए नहीं जोतते हैं कि वे ऐसा करना चाहते है परन्तु उनके पास लाभप्रद रोजगार और आय अर्जन के कोई वैकल्पिक उपाय नहीं है इसलिए वे ऐसा कर रहे हैं. कृषि व्यवहारिक हो सके उसके लिए बडे पैमाने पर किफायत की जानी अपेक्षित है. यह केवल बड़े आकार की जोतों पर संभव हो सकता है. भारत में आज 84% किसान छोटे (2.5-5 एकड़) और मझोले (<2.5 एकड़)किसानों के वर्गीकरण में आते हैं. यह जोत काफी छोटी है और भविष्य में इनके और छोटे हो जायेंगे.जिस पर वसूली और बडे पैमाने पर किफायत करने के विषय में सोचा नहीं जा सकता है, हमें ऐसी स्थिति दी गई है जिसमें हमें उस स्थिति को स्वीकार करने के बाद उसके बारे में कार्यनीति तय करनी है.

परिणामस्वरुप उत्पादन के लागत का काफी महत्त्व है. हमें छोटे भू-जोतों को व्यवाहारिक बनाने, उत्पादन की लागत को कम करने, किसानों के मार्जिन को बढ़ाने और उत्पादन में मूल्य समर्थन को सुनिश्चित करना है और यह देखना है कि उसे अपने उत्पाद से अधिक लाभ प्राप्त हो. इसके लिए हमें तेजी से समेकित पोषक तत्व और कीट प्रबंधन (न्यूट्रिएन्ट और पेस्ट मैनेजमेंट) तकनीकों की ओर शिफ्ट करना होगा जिससे लागत को बढ़ाए बिना उत्पादकता को सुधारा जा सकता है और इस प्रकार किसानों को बेहतर प्रतिफल हासिल हो सके. जैसाकि मैं पहले उल्लेख कर चुका हूं कि बागवानी में काफी संभावनाएं है. नाबार्ड पहले ही वाड़ी (छोटे बागान) अवधारणा के माध्यम से छोटे/ मझोले / आदिवासी किसानों के परिवारों की आजीविका की स्थितियों में सुधार लाने के प्रयोग कर चुका है और उसमें सफल भी हुआ है.

इन छोटे/मझोले किसानों के अलावा काश्तकारी /बटाईदार/ भूमिहीन श्रमिकों की भी काफी संख्या हैं जिन्हें रोजगार के अवसर और लाभकारी आजीविका का विकल्प उपलब्ध कराने की आवश्यकता है. इसके लिए कृषि से संबंद्ध गतिविधियों (डेरी, मुर्गीपालन, सूअर पालन आदि) और गैर-कृषि (कारीगर, बुनकर कुंभकारी आदि) गतिविधियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है इसके लिए इनके प्रोत्साहन और क्षमता निर्माण के अलावा तैयार माल को बेचने के लिए समुचित लिंकेज और विपणन सुविधाओं की भी आवश्यकता है.

ऋण सहायता

अंततोगत्वाः विभिन्न गतिविधियों को व्यावहारिक रूप देने के लिए पर्याप्त और समय पर ऋण सहायता उपलब्ध कराई जानी आवश्यक है. किसान ऋण की लागत की परवाह नहीं करता है, महाजनों पर उसकी निर्भरता उनका पर्याप्त प्रमाण है. उसे समय पर और पर्याप्त मात्रा में ऋण की उपलब्धता की चिंता होती है. इस स्थिति में नाबार्ड जैसी शीर्ष संस्था की भूमिका अधिक जिम्मेदारी वाली हो जाती है. यद्यपि नाबार्ड गरीबों की ऋण क्षमता को बढ़ाने के लिए अपने विकास और प्रोत्साहक प्रयासों के अलावा अपनी विभिन्न पहलों .निदेशों के माध्यम से किसानों को पर्याप्त ,

समय पर और सस्ते ऋण उपलब्ध कराने के लिए प्रयासरत है. किसानों के लिए किसान क्रेडिट कार्ड और गैर-कृषि क्षेत्र के लिए स्वरोजगार क्रेडिट कार्डों से किसानों को आसानी से ऋण सुविधाएं प्राप्त हो रही हैं. एक निविष्टि के रूप में ऋण को सब तक पहुँचना है, ऋण का ही एक रूप बीमा है. विशेष रूप से शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों के संसाधन हीन गरीब/छोटे / मझोले किसानों जो प्रकृति की आपदाओं को झेलने और जोखिमों से अपना बचाव कर पाने में असमर्थ होते है, के लिए ऋण के साथ-साथ बीमे का भी बहुत महत्त्व है. इन किसानों के लिए ऋण और बीमा तक पहुँच के लिए टेक्नालॉजी का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है. भारत में 13 करोड़ किसान हैं, हम तीन करोड़ से अधिक किसानों के लिए औपचारीक बीमा के लिए ऋण की पहुँच नहीं करते है, वे उधारकर्ता है परन्तु सूखे, ओलावृष्टि, तूफान साइकलॉन आदि के कारण वे ऋण लौटाने में असमर्थ है. जब वे औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से दुबारा ऋण नहीं ले पाते हैं तो वे महाजनों के पास जाते हैं और उनसे काफी उंची ब्याज दरों पर पूंजी प्राप्त करते है और जिसके ब्याज दर कभी-कभी 48% तक उंची होती है.

अंत में

मैंने अभी तक आपसे जो कुछ विचार-विमर्श किया है यह समस्या को संकेत भर जैसा ही है. कृषि का विकास करने के लिए यह जरूरी है कि इसे एक उद्योग समझा जाए और ऐसे प्रयास किए जाने अपेक्षित हैं जिनसे हम ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि और गैर-कृषि दोनों क्षेत्रों में पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध करवा पाएंगे. विविधिकरण, वाणिज्यिकरण और उच्च मूल्य वाली फसलों के उत्पादन से ही अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकेंगे. करवा पाए. कृषि की समृद्धि तब तक नहीं हो सकती जब तक हम ग्रामीण लोगों की खरीददारी की क्षमता को नहीं बढ़ा पाते है और आर्थिक वृद्धि को बनाए नहीं रख सकते है. ग्रामीण जनता की खरीददारी की क्षमता को बढ़ाना ही होगा. यदि ग्रामीण क्षेत्रों में खरीरदारी की क्षमता बढ़ती है तो वे अधिक वस्तुएँ और सेवाओं को हासिल कर सकते हैं और अर्थव्यवस्था को आगे जारी रख सकते है. कृषि क्षेत्र में बिना विकास किए हम हमारी अर्थव्यस्था में ऊंची वृद्धिदर को कायम नहीं रख सकते है, इसके साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि न तो अत्यधिक उत्पादन हो और न ही कम. हम स्थिर मूल्य बनाए रखने में और अंतर्रराष्ट्रीय मार्केट को अपने लाभ के लिए प्रयोग कर पाने में समर्थ है. यह तभी संभव हुआ है जब हम फसलोत्तर हानियों और अन्य कमियों को कम करने में समर्थ हुए है. अपने उत्पादों के कृषि प्रोसेसिंग और मूल्यसंवर्धन को प्रोत्साहित कर हम अपने किसानों और देश के लिए विशेष रूप से निवेशों के लिए बेहतर प्रतिफल सुनिश्चित कर पाएंगे.

पुनर्वित्त पर ब्याज दर में संशोधन

मुद्रा बाजार की स्थितियों, समष्टि आर्थिक परिदृश्य और ग्रामीण क्षेत्रों में पूंजी निर्माण संवर्धित करने को ध्यान में रखते हुए नाबार्ड ने विभिन्न ग्रामीण वित्तीय संस्थाओं द्वारा प्रदान किए गए ऋणों के संबंध में निवेश ऋण के लिए 25 बेसिस प्वाईंट से लेकर 75 बेसिस प्वाईंट तक ब्याज दरों में कमी कर दी है.

वाणिज्य बैंकों के लिए 02 फरवरी 2009 से प्रभावी संशोधित ब्याज की दर 9.50% वार्षिक रहेगी तथा सहकारी बैंकों और क्षेग्रा बैंकों के लिए 9% वार्षिक रहेगी. पूर्वोत्तर क्षेत्र, पहाड़ी राज्यों और अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में वाणिज्य बैंकों द्वारा किए गए वित्तपोषण के मामलों में 50 बेसिस प्वाईंट की विशेष छूट प्रदान की गई है.

सेवा केंद्र एजेंसियों को सहायता

भारत सरकार की राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना 2006 के तहत एक लाख साझा सेवा केंद्रों की स्थापना करने की योजना बनाई गई है जो सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आई सी टी) के माध्यम से संचालित किए जाने वाले कियोस्क होंगे जिससे नागरिक / किसानों से संबंधित आँकड़े/ सूचना और सरकार एवं निजी क्षेत्र की सेवाएं प्रदान करने में मदद मिलेगी. यह योजना तीन टियरों वाली कार्यान्वयन फ्रेमवर्क की है जो निम्नानुसार रहेगी :

- फील्ड स्तर पर, स्थानीय ग्राम स्तरीय उद्यमियों (वी एल ई) (सामान्य रूप से फ्रेंचाइजी के समकक्ष) को वित्तपोषित किया जाएगा जिससे वे 5-6 गाँवों के समूह में ग्रामीण उपभोक्ता को सेवा प्रदान करने के लिए अपने साझा सेवा केंद्रों की स्थापना कर सकें.
- बीच के स्तर पर एक सेवा केन्द्र एजेंसी (एस सी ए), सामान्य रूप से फ्रेंचाईजी के समकक्ष, कार्य करेगी और वीएलई नेटवर्क और कारोबार समेत चयन, प्रशिक्षण और वीएलई को उपकरण प्रदान करने की व्यवस्था करेगा. प्रत्येक सेवा केन्द्र एजेंसी में 100-200 साझा सेवा केन्द्र शामिल रहेंगे और इसे अपने सेट अप और कार्यों के लिए वित्तीय सहायता की जरूरत पड़ेगी.
- राज्य स्तर पर राज्य, राज्य की नामित एजेंसी, योजना के कार्यान्वयन के लिए सहायता प्रदान करते हैं और सेवा केन्द्र एजेंसी को अपेक्षित नीति और अन्य सहायता प्रदान करते हैं.

इस योजना के अंतर्गत कोई भी पूंजी संबंधी सब्सिडी नहीं प्रदान की जाती और साझा सेवा केन्द्रों को सरकारी सेवाओं से राजस्व की गारंटी युक्त प्रावधान के रूप में सहायता प्रदान की जाती है. राष्ट्रीय योजना के अनुसार एक लाख साझा सेवा केन्द्रों की स्थापना के समक्ष अब तक सिर्फ लगभग 22,000 साझा सेवा केन्द्र ही स्थापित किए जा सके हैं.

सीएससी की स्थापना के विलंब के लिए सेवा केन्द्र एजेंसियों ने निधियों की कमी को एक प्रमुख कारण बताया है. इसलिए नियत समय पर परियोजना के कार्यान्वयन के लिए बैंक द्वारा सेवा केन्द्र एजेंसियों और साझा सेवा केन्द्रों को मिलने वाली सहायता बहुत महत्वपूर्ण होती है. संचार और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार ने सभी बैंकों से अनुरोध किया है कि वे सेवा केन्द्र एजेंसियों और ग्राम स्तरीय उद्यमियों (वीएलई) को वित्तीय सेवा प्रदान करने के लिए उपयुक्त योजना बनाएँ.

आपसे अनुरोध है कि यदि योजना को सफलतापूर्वक और सुगम तरीके से कार्यान्वित करना है तो अपने राज्य में स्थित क्षेग्रा बैंकों / रास बैंक/ जिमस बैंकों / रासकृग्रावि बैंक से अनुरोध करें कि वे सेवा केन्द्र एजेंसियों और ग्राम स्तरीय उद्यमियों को वित्तीय सेवा प्रदान करने के लिए उपयुक्त योजनाएं बनाएं.

(सं. सं. एनबी./एफआईडी/344/एफआई-01/2008-09 दिनांक 30 जनवरी 2009)

ऋण माफी योजना के लिए विवेकपूर्ण मानदंड

ऋण माफी योजना के अंतर्गत भारत सरकार ने दूसरे, तीसरे और चौथे किस्तों में क्रमशः जुलाई 2009, जुलाई 2010 और जुलाई 2011 में 364- दिवसीय भारत सरकार के ट्रेजरी बिल्स पर परिपक्वता की दर से तात्कालिक आय पर ब्याज की अदायगी करने का निर्णय लिया है.

i) इन किस्तों पर पहली किस्त (अर्थात् नवंबर 2008) की आहरण की तारीख से प्रत्येक किस्त की वास्तविक संवितरण की तारीख तक ब्याज की अदायगी की जाएगी.
ii) यह निर्णय लिया गया है कि ऋण माफी योजना और ऋण राहत योजना के अंतर्गत शामिल किए गए लेखों के लिए सिर्फ भारत सरकार से प्राप्त राशियों के लिए वर्तमान मूल्य (पीवी) में हुई हानि के लिए रासकृग्रा वि बैंकों / प्रासकृग्रा वि बैंकों को कोई प्रावधान करने की जरूरत नहीं है.

(सं. सं. एनबी. डॉस. एचओ. पोल/ 3691/जे. 1/2008-09 दिनांक 7 जनवरी 2009)

निष्क्रिय किसान क्लबों के लिए पुनरूत्थान पैकेज

यह देखा गया है कि 32000 किसान क्लबों में से लगभग 7% किसान क्लब निष्क्रिय होने के बारे में रिपोर्ट की गई है. चंडीगढ़ और हैदराबाद में आयोजित की गई अभिमुखी-सह- जागरूकता बैठकों में इस विषय पर चर्चा हुई है. पुनरूत्थान की लागत पूरा करने के बाबत रु.10000/- प्रति क्लब सहायता प्रदान करने का निर्णय लिया गया है जिसमें निष्क्रिय क्लब के सदस्यों के लाभ के लिए प्रबंध किए जाने वाले अभिमुखी दौरे और संबंधित शाखा प्रबंधकों और उन्हें प्रदान की जाने वाली सहायता की राशि शामिल है और यह इसकी उच्चतम सीमा है.
सं. सं. एनबी. डीपीडी-एफएस/2474/एफसीपी-1/2008-09 दिनांक 01 जनवरी 2009

ग्राम विकास कार्यक्रम - गैर सरकारी संगठनों को प्रोत्साहन सहायता

25 राज्यों में 421 जिलों के 916 गाँवों में ग्राम विकास कार्यक्रम कार्यान्वित किया जा रहा है. विकास के लिए चिन्हित किए गए 50% से अधिक गाँवों में यह योजना कार्यान्वित की जा रही है. बेहतर आयोजना और कार्यान्वयन हेतु क्षमता निर्माण उपायों को सुनिश्चित करने की दृष्टि से क्षेत्रीय कार्यालयों के नोडल अधिकारियों तथा चुनिंदा नोडल एजेंसियों के लाभ के लिए नागपुर, अमरावती और भुवनेश्वर में अभिमुखी सह जागरूकता बैठकें आयोजित की गईं. उक्त बैठकों से प्राप्त फीड बॅक के आधार पर निम्नानुसार निर्णय लिया गया है कि :

i) क्षेत्रीय कार्यालय के प्रभारी अधिकारी के पास ''मिसलेनियस इंटरवेंशनंस'' शीर्ष के अंतर्गत विशिष्ट प्रयोजनों जैसे आर्ट ऑफ लिविंग कार्यक्रम'' (प्रति कार्यक्रम अधिकतम रु.10,000/- तक) की लागत पूरी करने के बाबत प्रति इंटरवेंशन रु.15,000 और अन्य किंतु अचानक व्ययों के लिए रु.5000 तक की लागत का अधिकार रहेगा.

ii) पहाड़ी / दूर दराज / नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठनों के लिए ग्राम विकास कार्यक्रम के अंतर्गत प्रोत्साहन राशि को प्रति गाँव प्रति वर्ष रु.10,000 से बढ़ा कर रु.16,000 कर दिया जाएगा.

संदर्भ सं. राबैं.डीपीडी-एफएस / 1142 / वीडीपी /2008-09 दिनांक 31 दिसंबर 2008

नाबार्ड से संपर्क के लिए हमारी वेबसाईट - www.nabard.org देखें

एस के मित्रा, अमरेश कुमार, पी एल बेहेरा, डॉ. प्रकाश बक्षी और वी रामकृष्ण राव

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, बांद्रा-कुर्ला काम्प्लेक्स, मुंबई - 400 051 के लिए के आर नायर द्वारा संपादित और प्रकाशित तथा उनके द्वारा एलको प्रिन्टर्स, मुंबई द्वारा मुद्रित